Chap-7

# सप्तम् अध्याय

# व्यवसायिक तनाव से उद्भूत पारिवारिक विघटन की स्थितियाँ – हिन्दी–गुजराती कहानी के संदर्भ

# सप्तम् अध्याय

## व्यवसायिक तनाव से उद्भूत पारिवारिक विघटन की स्थितियाँ – हिन्दी–गुजराती कहानी के संदर्भ

बीसवीं शताब्दी की दुनिया औद्योगिक सभ्यता की ही दुनिया नहीं है वरन् यांत्रिक और मशीनी सभ्यता की भी दुनिया है। स्वतन्त्रता पूर्व और पश्चात् देश का जो आर्थिक स्थिति थी, वह बहुत अच्छी नहीं थी। जबकि हमारे देश का तनाव निर्धनता का तनाव है। पश्चिम की सामाजिक और आर्थिक संरचना और स्वयं अपने देश की सामाजिक एवं आर्थिक संरचना में ही मूलभूत अंतर है।

आधुनिक भारतीय समाज में व्यावसायिक और आर्थिक स्थिति में बडा वैषम्य है। विविध आर्थिक स्थिति में लोगों का रहन-सहन, वेष-भूषा, खान-पान, तौर-तरीके और सोचने-विचारने के ढंग में अंतर हो जाता है। वर्तमान भारतीय समाज अर्थप्रधान होता जा रहा है। अर्थ की महत्ता बढ़ जाने के कारण सामाजिक स्थिति का मापदण्ड आर्थिक स्थिति से निश्चित होने लगा है। सामाजिक असन्तोष का कारण आर्थिक विषमता है। आज भारत में भिन्न-भिन्न आर्थिक स्थिति वालें वर्गों में आपसी तनाव और संघर्ष है।

हमारे देश में आर्थिक लक्ष्य स्पष्ट नहीं है। पंचवर्षीय योजनाओं में इसके उदाहरण स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। गाँवों और शहरों की आर्थिक विषमता देखकर यह स्थिति और भी स्पष्ट हो जाती है। आर्थिक स्थिति की विषमता सामाजिक असन्तोष को जन्म देती है। गाँवों

और नगरों की यदि तुलना करें तो देखेंगे कि गांवों में रोजी-रोजगार की सुविधायें नहीं हैं, गृह-उद्योग नहीं हैं, भूमि सुधार नहीं हुआ है, इसीलिए ग्रामीण जनता नगरों की ओर पलायन कर रही है। हर भारतीय शहर में रहने लग जाता है, तो गाँव के प्रति उसका मोह भंग हो जाता है। उसकी मानसिकता ही बदल जाती है। अतः गाँव और नगर दोनों ही जगह निम्न आर्थिक स्थितिवाले लोगों में असन्तोष बढ़ा है। गरीब मजदूर और किसान आर्थिक तनाव के घेरे में हैं।

आर्थिक विषमता से जुडी हुई क्षेत्रीय किसानों की भी समस्याएँ हैं। किसानों को उनकी उपज का पूरा मूल्य नहीं मिल रहा है, उसे समुचित सुविधायें नहीं दी गई हैं। आजादी के बाद बड़े शहरों में जिस तरह से भीड़ बढ़ी है, आवास व्यवस्था कठिन और मँहगी हो गई है, उसके कारण आज गाँव के बेरोज़गार व्यावसायिक कारणों से गाँव से शहर हर रोज आवागमन में अपना बहुमूल्य समय नष्ट करते हैं। अगर पुरूष ही नौकरी करता है तो उसका कार्यस्थल इतनी दूर है कि कई बार वह अपने घर से आधा दिन तक बाहर रहता है। ऐसी स्थिति में उसे अपने घर की चिन्ता खाए जाती है। इसलिये महानगरों में ज्यादातर परिवार बाहर से आकर रहते हैं और असंयुक्त होते हैं। माता-पिता, भाई-बहन आदि गाँव या कस्बे में रहते हैं और केवल पति-पत्नी ही नगर में स्थानान्तरित हो जाते हैं।

स्वतंत्रता के बाद एक नई बात यह हुई कि मध्यम वर्ग की अनेक स्त्रियाँ अपने परिवार के आर्थिक दबावों, रहन-सहन का स्तर ऊपर उठाने के लिए अलग-अलग व्यवसायों से जुडने लगीं। यह परिस्थिति पहले कभी मध्यमवर्गीय लोगों ने कभी नहीं देखी थी। स्त्रियाँ भी

पुरूषों की तरह नौकरी करने लगीं, इसकी वजह से बहुत-सी पारिवारिक रीत-रस्मों में उथल-पुथल आ गई। स्त्रियाँ भी नौकरी कर के थक कर घर लौटतीं तो उसे भी पुरूषों की तरह ही तनाव महसूस होता है। इस प्रकार स्वतंत्रता के बाद स्त्रियाँ जो नौकरी करती हैं, उन्हें दुहरे उत्तरदायित्व को निभाना पड़ता है। उससे परिवार में कई समस्याएँ उठ खडी हुई। जहाँ स्त्रियाँ काम करती थीं, वह स्थल ऐसे सुरक्षित नहीं थे जहाँ वह अपने आप निर्भय होकर कार्य कर सकें।

भारत में शोषित और दलितों का एक बहुत बड़ा वर्ग है। आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण पहले वह अपने तनाव का प्रदर्शन नहीं कर सका। परन्तु हाल के वर्षो में उसकी आर्थिक स्थिति कुछ बेहतर हुई है। अतः अपने तनाव और असन्तोष का प्रदर्शन करने लगा है।

संयुक्त परिवार तभी तक अपना अस्तित्व बनाए रख सकता है जब तक उसके सदस्यों की आय का स्रोत संयुक्त हो। लेकिन भारत में अंग्रेजी राज्य के साथ पूंजीवादी व्यवस्था का आगमन हुआ और उसके विकास के साथ-साथ औद्योगिकीकरण बढ़ा और शहरी समाज अस्तित्व में आया। भारतीय आर्थिक, व्यावसायिक व्यवस्था में परिवर्तन का परिणाम यह हुआ कि संयुक्त परिवार बदलने लगे। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था व औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप बडे-बडे कारखानों की स्थापना हुई। गाँवों में स्थापित लघु उद्योग व धन्धों के नष्ट होने से वे लोग गाँवों से नगरों की ओर दौडने लगे। शहरीकरण के कारण व्यक्ति केवल अपनी पत्नी तथा बच्चों को ही शहर में रख सकता था। क्योंकि आज अर्थ चरम मूल्य के रूप

में प्रतिष्ठित हो गया है। अर्थ ने हमारे पारिवारिक तथा सामाजिक रिश्तों को प्रभावित किया है। अर्थाभाव पति-पत्नी के बीच सम्बन्धों में ह्रास का मुख्य कारण है। वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति भौतिक सुख-सुविधाओं से सम्पन्न चकाचौंध की दुनिया प्राप्त करने के लिए निरन्तर दौड़ रहा है। बढ़ती प्रतिस्पर्धा ने व्यक्ति को यान्त्रिक व मशीनी बना दिया है। आज भावना की जगह बुद्धि और तर्क ने ले ली है। व्यक्ति के जीवन में आयी इस व्यावसायिकता ने पति-पत्नी के बीच प्रेम, सहयोग व सौहार्द की भावना को प्रभावित किया। अब वह इस सम्बन्ध को भी व्यावसायिक रूप में लेने लगा। 'मृदुला गर्ग' की कहानी 'तुक' में नरेश स्टेट बैंक में चीफ एकाउन्टेन्ट है, जिसकी प्रत्येक शाम पत्नी के साथ क्लब में ब्रिज खेलने में व्यतीत होती है। वह पत्नी के रिश्ते को ब्रिज के खेल की तरह व्यावसायिक तौर पर लेता है। फलस्वरूप पत्नी द्वारा ब्रिज का खेल न सीखने पर वह उसकी विवशता को समझे बिना उस पर दोषारोपण करता है। उस समय पत्नी सोचती है "मैं इस युग में मिसफिट हूँ। मैं जानती हूँ उसकी होने को व्यवसाय की तरह नहीं ले सकूँगी। उसकी नाराजगी और खुशी को, उसकी संजीदगी और हँसी को, उसकी दिलचस्पी और रुखाई को व्यावसायिक जीवन के सामान्य उतार-चढ़ाव मानकर स्वीकार नहीं कर सकूँगी और इसलिए मैं उसे खुश भी नहीं कर सकूँगी।"[1] 'ममता कालिया' की कहानी 'उमस' की नायिका रानी तथा उसके पति विनोद के बीच टकराहट का कारण है विनोद की बढ़ती महत्वाकांक्षा के साथ रानी के स्वभाव में संगति न बैठना। क्योंकि उसकी व्यवसायिक रफ़्तार में हर काम में नया अंदाज उसे पसंद था। किन्तु पत्नी की गति पति की तरह तेज न होने के कारण दोनों में तनाव व विचारों में विरोधाभास बना रहता है। "शुरु में वह और उसका पति दोनों हमउम्र, हमपेशा और हमख्याल थे, पर यकायक न जाने कहाँ उसके ऊपर जंग और धूल जमने लगी। उसका पति एक तेज-

तर्रार आदमी था, जिसे हर वक्त रफ़्तार पसंद थी, व्यापार और व्यवहार में।"[2] इस प्रकार इस कहानी के अंतर्गत पत्नी की गति पति की तरह तेज न होने के कारण दोनों में तनाव व विचारों में विरोधाभास बना रहता है। वर्तमान समय में हमारे देश की सबसे बडी समस्या है बेरोज़गारी। शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् भी युवाओं को नौकरी नहीं मिल रही है, जिससे उनमें कुण्ठा, आक्रोश तथा गहरी निराशा व्याप्त है। बेरोज़गारी व बेकारी के कारण व्यक्ति को कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। कभी-कभी व्यवसाय की वजह से परिवार विघटित हो जाता है।

मधुकर सिंह की 'फ़िलहाल' का नायक अनेक प्रयत्न करने पर भी नौकरी प्राप्त करने में असफल रहता है तो अपने पिता के प्रति विद्रोही बन जाता है। कहता है - "मैं निष्ठा और ईमानदारीपूर्वक बोल रहा हूँ, मैंने कमाने की बहुत कोशिश की है। मेरा इसमें कोई कसूर नहीं है कि मैं आवारा हूँ। काम ढूँढते-ढूँढते सारी उम्र बीत गयी तो मैं क्या करूँ? उनकी नजर में ही सबसे ज्यादा गिरा हूँ।"[3] नायक सारी उम्र नौकरी ढूँढता रहा। वह काम करना चाहता है मगर उसे काम नहीं मिलता। परिवार में पिता से विद्रोह करता है और पिता के तनाव का कारण बनता है। 'नीलप्रभा भारद्वाज' की कहानी 'साहिल और तूफ़ान' में भी नायक साहिल बेरोज़गारी का शिकार है। बेकारी के कारण प्रेमिका महुआ से विवाह करने में असमर्थ है, साथ ही परिवार की उपेक्षा का शिकार होता है, माँ उसे पिता से छुपकर रोटी देती है। क्योंकि पिता के लिए बेरोज़गार बेटे का महत्व नहीं है। कम उम्र होते हुए भी बहन अपने भाई साहिल से कहती है - "भैया, तुम नौकरी क्यों नहीं कर लेते?"[4] तब उसे स्वयं पर खीझ महसूस होती है और वह कहता है - "तू भी इतना जान गई है इस उम्र में मेरी नन्हीं

बहना।" साहिल का गला रुँध जाता है। रंजना चली गई है। पर उसके शब्दों की आहट देर तक उसके भीतर गूँजती रही। बाहर बिजली की कड़क, भीतर तूफ़ान और मुँह में ठण्डा निवाला। यही है साहिल और तूफ़ान की सच्चाई।"[5] व्यावसायिक न होने के कारण बेटा परिवार में हर व्यक्ति से दबकर रहता है और परिवार में रहते हुए भी वह तनाव से गुजरता है।

विनोददास की 'इतनी जल्द' कहानी बेरोज़गारी से ग्रस्त युवक की है, जो अपनी पत्नी के गर्भवती होने पर इसलिए खुश नहीं होता क्योंकि उसके पास बच्चे की परवरिश के लिए नौकरी नहीं है। पति की उपेक्षा और चिंता देखकर पत्नी गर्भपात की गोलियाँ खा लेती है, "उसने झटके में गदोली में रखी हुई गोलियाँ निग़ल लीं। थोडी देर में उसे लगा कि उसके उदर में भूचाल आ गया है। वह दर्द से तड़पने लगी। उसे लगा कि उसके भीतर कुछ कट-कटकर गिर रहा है। वह दाँत पर दाँत रखे हुए संडास भ ागी। अचानक एक चीख के साथ वह संडास में गिर पड़ी और बेसुध हो गयी। सारा संडास खून से भर गया।"[6] इस प्रकार आर्थिक मजबूरी व बेकारी के समक्ष व्यक्ति का आत्मसमर्पण व विवशताका चित्रण किया गया है। सुरेन्द्रकुमार की कहानी 'समाधान' एक ऐसी कहानी है जो पिता को मरने पर मजबूर कर देती है। कहानी में बेटा पढ़-लिखकर भी नौकरी प्राप्त करने में असमर्थ है। पिता दो महिने में रिटायर होने वाले हैं। परिवार वालों की चिन्ता यह है कि यदि इस बीच बेटे को कहीं नौकरी नहीं मिली, तो यह सरकारी क्वार्टर भी खाली करके रस्ते पर आ गये, तब क्या होगा? पूरी कहानी में अंत तक पिता व पुत्र इस समस्या को लेकर तनावग्रस्त हैं तभी पिता समाधान निकालते हुए पत्नी से कहता है -

'बिट्टो की माँ, सुना है कोई ऐसा कानून बन गया है कि यदि कोई सरकारी आदमी अपनी नौकरी के समय में ही मर जाये तो उसके लड़के को ही विभाग उसकी योग्यतानुसार नौकरी देता है। इतना कहकर भवानी बाबू मौन हो गये।

थोड़ी देर बाद फिर फुसफुसाये "बिट्टो की माँ। समाधान है... सब ठीक हो जाये यदि मैं जानबूझकर एक्सीडेन्ट कर.... ।"[7] यहाँ पिता की उस वेदना का चित्रण किया गया है, जो बेरोजगार पुत्र को नौकरी दिलवाने हेतु स्वयं अपना एक्सीडेन्ट करवाना चाहता है। आज यही परिस्थिति कई भारतीय परिवारों में है, जो इसी तनाव से गुजर रहे हैं।

व्यावसायिक तनाव का सबसे अधिक शिकार मध्यमवर्गीय परिवार हुए हैं, जिन्हें अपनी रोजमर्रा की जरूरतों के लिए हर काम करना पड़ता है। पारिवारिक विघटन का एक कारण यह भी रहा है।

'सुधा अरोड़ा' की कहानी 'दमनचक्र' का यही संकेत है। व्यवसाय से जुड़े अर्थ के अभाव में पारिवारिक ढाँचे, टूटते-बिखरते और गिरते चले जाते हैं। कहानी का नायक आनन्द चक्रवर्ती एक ऑफिस में क्लर्क है। उसकी चार लड़कियाँ और एक निकम्मा लड़का दामू है। दामू बेरोज़गार युवक है। धन के अभाव में पिताजी उसे पढ़ाने में असमर्थ हैं। साथ-साथ बेटियों के विवाह की चिन्ता उन्हें लगी रहती है। लेकिन पिता की आर्थिक स्थिति से परिचित वे लड़कियां दुर्भाग्य से किसी के साथ भाग जाती हैं। इस स्थिति पर व्यंग्य करते हुए एक व्यक्ति कहता है - "आदमी तो जिंदगीभर क्लर्क का क्लर्क ही रहा। तीन-तीन बेटियों की

कमाई पर घर चलाया है बुढिया ने। तीन बेटियों ने तो माँ-बाबा को दान दहेज से बचा लिया और अपनी मर्जी से शादी करके दरवाजे से जो बाहर निकलीं, फिर कभी पीछे मुड़कर उन्होंने नहीं देखा। अच्छा हुआ माँ तभी चली गई, चौथी बेटी की कमाई की शर्म उन्हें नहीं उठानी पडी और न ही अपने इकलौते, सब से लाडले बेटे की हाजिर जवाबी का सामना उन्हें करना पड़ा जो उनकी धुँधलती हुई आँखों की आखिरी उम्मीद था।"[8]

व्यवसाय से जुडे अर्थ के प्रभाव से निजी से निजी सम्बन्धों ने भी अपनी नैतिकता खो दी है। भाई-बहन, माता-पिता किस कदर परस्पर दूर हो गए हैं, निर्धनता अभिशाप है, इस अभिशाप को मिटाने के लिए व्यक्ति नीच से नीच कर्म करने पर उतारू हो जाता है। यह व्यक्ति की मजबूरी नहीं है, एक सामाजिक मजबूरी है।

व्यावसायिक तनाव के मूल में व्यवसाय की मूल प्रकृति और उससे जुड़ी स्थितियाँ काफी हद तक जिम्मेदार हैं। साथ ही व्यवसाय में अधिकारी द्वारा किया गया पक्षपातपूर्ण व्यवहार किस तरह सम्बन्धों में तनाव पैदा करता है इसका उद्‌घाटन मोहन राकेश की कहानी 'जानवर और जानवर' कहानी में हुआ है। इसमें बस्ती से दूर एक पहाड़ी स्कूल में सर्विस करने वाले व्यक्तियों का चित्रण है। स्कूल के नियमों और पादरी के व्यवहार के कारण सभी क्षुब्ध हैं। कहानी का हर पात्र उस वातावरण से दूर जाना चाहता है। पादरी रोज गिरजे से निकलता हुआ उन लोगों की स्त्रियों पर एक नजर ज़रूर डाल लेता था। पादरी की व्यक्तिगत जिन्दगी के बारे में सभी को पता है। इसलिए उसके बनावटी रूप को देखकर जॉन कहता है - "यह अपने को पादरी कहता है। सबेरे परमात्मा से संसार भर का चित्रण सुधारने के लिए

प्रार्थना करेगा और रात को... हरामजादा।"[9] व्यवसाय पाने के लिए अधिकारी द्वारा किया गया पक्षपातपूर्ण व्यवहार बाधा बनता है, यही प्रस्तुत किया गया है।

आज महानगरों की व्यवसाय से सम्बद्ध सबसे बडी समस्या आवास की हो गई है। अगर पुरूष नौकरी करता है तो उस के व्यवसाय का स्थल इतनी दूर है कि कई बार अपने घर से दूर आने जाने में उसे दस-बारह घण्टों तक बाहर रहना पडता है। ऐसी स्थिति में उसे अपने घर की चिन्ता लगी रहती है। क्योंकि महानगरों में ज्यादा-से-ज्यादा परिवार बाहर से आकर बसते हैं। माता-पिता, भाई-बहिन आदि गाँव या कस्बे में रहते हैं। केवल पति-पत्नी और बच्चे सिर्फ स्थानान्तरित हो जाते हैं। इन परिस्थितियों में पत्नी घर पर अकेली रहती है। स्वभावतः अनेक शंकालु पुरूष अपनी पत्नी पर अकारण शंका करते रहते हैं। इस प्रकार मध्यमवर्ग हर स्थिति में विभिन्न मानसिक कठिनाईयों से गुजर रहा है। विभिन्न प्राइवेट कम्पनियों आदि की नौकरियाँ भी ऐसी हैं, जिनमें स्थानान्तरण होते रहते हैं। इस लिए बच्चों के स्कूल का दाखिला, मकान मिलना आदि कठिनाईयों के कारण स्थानान्तरित कर्मचारी कई बार अकेले जाने के लिए विवश हो जाते हैं और परिवार से अलग रहने पर पारिवारिक सम्बन्धों में अनेक तनाव जन्म लेते हैं।

मोहन राकेश की कहानी 'रोज़गार' में होटल का व्यवसाय और उससे जुड़ी परेशानियाँ गहरे रूप में उभर कर आई हैं। मिस दारूवाला अपने बीमार और बेरोज़गार भाई की खातिर अपने शरीर का व्यापार करती है। अपने परिवार को बचाने के लिए वह कोई भी काम करने के लिए तैयार हो जाती है। एक दिन उसके देर से उठने पर उनमें झगड़ा हो जाता

है। भाई के गाली देने पर वह रोने लगती है - "सुना तुमने सेठजी। यह आदमी मुझे हरामजादी कह रहा है। मेरे होटल में रहकर मेरी रोटी खाकर मुझे गाली देते इसे शर्म नहीं आई। बेशरम, बेहया।"[10] हर क्षेत्र में रहनेवाली नारी दोहरी मानसिकता से पीड़ित रहती है।

कार्यशील नारी दोहरी मानसिकता से पीड़ित रहती है। वह अपेक्षा करती है कि परिवार के अन्य जन घरेलू कार्यो में उसकी सहायता करें। परिवार के अन्य सदस्यों के काम करने पर अपराध-बोध भी अनुभव करती है। नौकरी करते हुए नारी को पति का अविश्वास भी झेलना पड़ता है। यदि स्त्री अध्यापन आदि कार्यों में लगी होती है तब तो पति को बुरा नहीं लगता, परन्तु यदि वह किसी प्रतिष्ठित पद पर पुरूषों के साथ काम करती है, अपने व्यवसाय को गंभीरतापूर्वक लेती है, तो पति को यह उचित नहीं लगता। हीन-भावना के कारण पति के अहम को इससे धक्का पहुँचता है।

'गिरिराज किशोर' की कहानी 'फाकवाला घोड़ा' का पति हीन-भावना से ग्रस्त है। पति क्लर्क और पत्नी डिप्टी-सेक्रेटरी है। पत्नी पर घर और पति की उपेक्षा करने का दोषारोपण किया जाता है। या तो वह दूसरे पुरूषों में रूचि रखती है या काम में अधिक रूचि का कारण 'बॉस' में उसकी रूचि रखना है। या किसी पुरूष विशेष से उसके सम्बन्ध हैं। इस कारण उसे तनाव झेलना पड़ता है। अपने आपको टूटा हुआ महसूस करती है। इसी तरह मोहन राकेश की 'मिसपाल' सूचना विभाग में काम करती है। जिससे अपनी नौकरी से कोई लगाव नहीं है। इसका कारण दफ़्तर के लोगों का उसके प्रति व्यवहार है जो उन्हें पसंद नहीं है।

"क्या बात है मिस पाल, आज रंग बहुत निखर रहा है। दूसरी तरफ से जोरावरसिंह बात जोड़ देता, - आजकल मिस पाल पहले से स्लिम भी हो रही हैं।" मिसपाल इन संकेतों से बुरी तरह परेशान हो उठती और कई बार ऐसे मौके पर कमरे से उठकर चली जाती। उसकी पोशाक पर भी लोग तरह-तरह की टिप्पणियाँ करते रहते थे।"[11]

कुछ व्यवसाय ऐसे होते हैं जो व्यक्ति को इतना अधिक संलग्न रखते हैं कि घर से उसका सम्बन्ध प्रायः टूटता चला जाता है। मोहन राकेश 'मिट्टी के रंग' कहानी में मैथिलोन और सदानन्द मिश्र भारतीय सेना के सैनिक हैं। दोनों अपनी नौकरी के कारण अपने परिवार से बहुत दूर आ गए हैं। लेकिन परिवार की याद उनके मन में बराबर बनी रहती है। सदानन्द बार-बार अपनी पत्नी माधवी और माँ को याद करता है। वह एक बार उन्हें देखना चाहता है। दो दिन बाद उनकी टुकड़ी फ्रंट पर भेज दी जाएगी, यह सोचकर वह विकल हो जाता है। वह लडना नहीं चाहता। मैथिलोन उससे कहता है - "तो जहर खा लो। जब तक तुम जिन्दा हो, तब तक तुम लड़ने के लिए मजबूर हो। तुम्हारे चाहने-न-चाहने की परवाह यहाँ किसी को नहीं। तुम्हारी जान दूसरों ने खरीद रखी है। उनके काम आओ, नहीं तो नष्ट हो जाओ।"[12]

मैथिलोन तथा सदानन्द दोनों को अपनी जिन्दगी का भरोसा नहीं है। नौकरी के प्रति उनको कोई लगाव नहीं है। सिर्फ वेतन मिलता है, इसलिए उन्हें लड़ना है और वेतन के लिए ही घर से दूर तनाव को झेलते हैं।

वर्तमान समय का हर व्यक्ति अपने कार्य से असन्तुष्ट है। चाहे नौकरी हो या व्यवसाय

उसे अपने कार्य के प्रति कोई लगाव नहीं है। "हर व्यक्ति अपनी अपनी जगह अपने को अवसंगत (मिसफिट) महसूस कर रहा है। ... अवसंगत होने की इस अनुभूति ने जीवन की विषमता को और भी गहरा बना दिया है। जो अफसर है वह भी अपने वातावरण और कार्य से सन्तुष्ट नहीं है, जो मजदूर हैं वह भी सन्तुष्ट नहीं है। वह कोई भी हो, कोई भी अपनी प्रतिभा के उपयोग से सन्तुष्ट नहीं है।"[13]

कुछ व्यवसाय ऐसे हैं, जिनमें व्यक्ति का अपने परिवार से आत्मीय सम्बन्ध टूटता चला जाता है। स्वयं की प्रसिद्धि और पैसा कमाना ही उसका मुख्य उद्देश्य हो जाता है। परिवार के सदस्य उसके लिए पैसा कमाने का साधन मात्र रह जाते हैं। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं। लेकिन इसमें जिन सदस्यों को उपयोग में लाया जाता है चूंकि उनकी इच्छा और आकांक्षाओं का ख्याल नहीं रखा जाता इसलिए वे भी अपने मन ही मन परिवार से दूर होते चले जाते हैं।

'महीपसिंह' की कहानी 'कीचड़' में दिखलाया गया है कि पहले बूढ़े माँ-बाप का सहारा बनना बेटे का कर्तव्य माना जाता था। एक जमाना था कि बेटा कमाने लग जाय तो घर की जिम्मेदारी उसके सिर पर आ जाती थी। मगर अब जमाने की हवा इस प्रकार बदल रही है कि सामाजिक या पारिवारिक सम्बन्धों को कोई मानता ही नहीं। ऐसा लगता है कि नैतिकता की दीवार धीरे-धीरे टूट रही है। जमाना भी कुछ ऐसी परिस्थितियाँ पैदा कर रहा है कि पढे-लिखे नौजवानों को नौकरी मिलना असम्भव होता जा रहा है। प्रयासों के उपरान्त मिल भी गयी तो कहीं अपने गाँव से दूर मिलती है। यही हाल है, 'कीचड़' के रमन का।

नौकरी करने के लिए वह बम्बई आता है। बम्बई में अपनी बीबी-बच्चों के साथ रहते वह बूढ़े माँ-बाप, चाचा-चाची सभी को भूल जाता है। दोस्तों से भी सम्बन्ध तोड़ लेता है। न चिट्ठी लिखता है, न घर कुछ रूपये-पैसे भेजता है। पिताजी हेडमास्टर थे, जो अब रिटायर हो चुके थे। घर चलाने के लिए अब भी मजबूरी से ट्यूशन पढ़ाने जाते हैं। "हेडमास्टरी से रिटायर हुए आठ वर्ष हो गए हैं। पर यह ट्यूशन पढ़ाना अभी तक उनके पीछे पडा हुआ है।"[14] रमन उनकी एक मात्र संतान था। जो उनसे हजार मील दूर बम्बई में बैठा हुआ अपनी जिन्दगी जीने की कोशिश कर रहा है। उसकी स्थिति यह है कि वह इतना कमा ही नहीं सकता कि कुछ बचाकर माता-पिता को भेज सके। इसी कारण वह अपने घर की सुध ही नहीं लेना चाहता। बम्बई में पहुँचने के बाद कुछ ही दिनों में ऐसी जगह रहने चला जाता है कि किसी को उसका पता ही न मिले। "रमन बम्बई में रह कर क्या करता है? क्या कमाता है? इसका किसी को कुछ पता नहीं था। इसका पता लगना भी पीडा देने वाली बात थी क्योंकि रमन तो वहाँ कुछ भी नहीं करता था।"[15]

ऐसी लाचारी की स्थिति में व्यक्ति को अपने सीमित परिवार के साथ घर से दूर जाना पडता है। यह दूरी धीरे-धीरे उसे अपने घर-बार से ज्यादा से ज्यादा ही तोड़ने लगती है। अतः वह माता-पिता को कुछ भेज नहीं सका। कुछ लोग तो ऐसे होते हैं कि माता-पिता से अलग होने पर उनको पूछते तक नहीं। पिता-पुत्र के सम्बन्धों में बेरोज़गारी से दरार पड़ गयी है। बेरोज़गारी ने आज युवाओं की हालत नौकरी से भी बदतर कर दी है और सबसे दुःखदायी स्थिति यह है कि ये वही आत्मीयजन हैं - माता-पिता, भाई-बहन हैं जिन्होंने मनमोहक स्वप्न देखते हुए अपने बेटे-भाई को बड़े होते देखा था।

'मंजुल भगत' की 'पावरोटी और कटलेट्स' कहानी में भी एक लड़के का स्वाभिमान उसे भीख नहीं माँगने देता। कहानी की मेमसाहब अपनी जिन्दगी को रंगीन बनाने के लिए रेस्टराँ में आती है। एक भूख से लड़ते हुए अखबार बेचने वाले से उसका अखबार नहीं खरीदती और कहती है कि अखबार नहीं चाहिए मगर पैसे चाहिए तो ले लो और जान छोड़ो। रेस्तराँ में साहब के साथ कट्लेट्स खा, कॉफी पीकर जब वह घर लौटती है, तब वही बच्चा बिके अखबार से पैसों से पाव रोटी खरीदकर खा रहा है। मंजुल भगत की यह कहानी बताती है कि धनी लोग गरीबों को स्वाभिमानहीन और तुच्छ समझते हैं, मगर लडका अपना छोटा सा व्यवसाय - अखबार बेचना और पैसे कमाकर उससे खाना, स्वाभिमान से जीने में गौरव का अनुभव करता है। दीप्ति खंडेलवाल की कहानी 'बेहया' में परिवार की आर्थिक कठिनाइयों को देखते हुए कहानी की नायिका पति की बीमारी और बेटे की पढ़ाई के लिए शहर के एक बिगड़े हुए रईस सेठ घनश्याम की रखैल बन जाती है, क्योंकि और कोई काम-धंधा मिलने से रहा तो वह बेहया बनने पर विवश हो जाती है। व्यवसायिक तनाव के कारण दिनबदिन निर्धन वर्ग इस आघात का शिकार होता जा रहा है। व्यवसाय न होने के कारण आज भाई को भाई न रहने दिया, पुत्र-पिता में दरार पैदा कर दी और बेटी माँ से दूर जा गिरी। दीप्ति जी की एक और कहानी 'प्रयास' में शंकर एक मध्यमवर्गीय परिवार का इकलौता बेटा है। अर्थोपार्जन से संघर्ष करता हुआ अपनी तीन बहनों का हाथ पीले कर पाता है। घर में बुढी माँ है जो आँखों से अन्धी है, उसका ऑपरेशन करना जरुरी है। पिता को चार धाम की यात्रा पर जाना है। सब की जरुरतें अकेला पूरी कर रहा है। विवाह के लिए उसके सामने दो लडकियाँ हैं, जिनमें एक सुन्दर है, दूसरी शोभना जो साँवली सी लड़की है, बी.ए.-बीएड. है और नौकरी करती है। इन दोनों में से उसने शोभना को चुना क्योंकि घर गृहस्थी की गाडी चलाने

में वह उसकी सहायता कर सकती थी। आज आदमी के जीवन में विवाह, प्रेम, ममता और रिश्ते-नाते भी व्यावसायिकता से प्रभावित होते हैं। महेरुन्निसा परवेज़ की कहानी 'अकेला गुलमोहर' कहानी की सुधा अपने बड़े भाई की स्वार्थवृत्ति का शिकार हो जाती है। वह नौकर करती है और इसी से घर में खर्च चलता है। नौकरी करती बहन का विवाह उस भाई को मंजूर नहीं क्योंकि वह खुद कोई काम काज नहीं करता है, और अपने स्वार्थ के लिए बहन के भविष्य को अन्धकारमय बना देना चाहता है। बेरोज़गार भाई बहन के भविष्य के साथ खेलता नजर आता है। निरुपमा सेवती की कहानी 'टुच्चा' में व्यवसाय से जुडी, आर्थिक मोर्चे पर लड़ती नारी की कहानी है। नायिका अपने पिता के देहान्त के बाद, सारे परिवार का बोझ वहन करने का एक मात्र साधन बनकर रह गई है। उसका अपना कोई व्यक्तित्व ही नहीं रहता। घर के लोगों के लिए वह रोटी जुटाने की मशीन और बॉस के लिए मानसिक तृप्ति का एक माध्यम। आज यदि कहीं सबसे ज्यादा बिखराव आया है, तो पारिवारिक सम्बन्धों में। से. रा. यात्री की कहानी 'अँधेरे का सैलाब' में व्यवसाय से जुड़े दो परिवारों की आर्थिक स्थितियों को दर्शाया गया है। एक के घर मिठाई के अम्बार लग जाते हैं, तो दूसरी ओर बेरोज़गार परिवार है, जिसने एक किलो सस्ती-सी मिठाई का डिब्बा खरीद कर बच्चों से छिपाकर रख दिया है और बच्चे उसे खाने के इंतजार में भूखे ही सो जाते हैं। यात्री जी की कहानी 'व्यवस्था' में भी निर्धनता की चक्की में पिसते हुए व्यक्ति की व्यथा चित्रित की गई है, जो रोज़मर्रा की घरेलू आवश्यकताएँ तक पूरी करने में असमर्थ है। 'आशीष सिन्हा' की कहानी 'आदमखोर' के अनुसार आज का दलित वर्ग इतनी राजनीतिक चेतना के बावजूद भयंकर व्यावसायिक दबाव में जी रहा है।

'कनु अड़ासी' की 'उपहार' में ऐसे परिवार की तासीर दिखलाई है, जो अर्थ के लिये अपने माँ-बाप की परवाह नहीं करते। बाप जो अभी रिटायर नहीं हुए, फिर भी उसे बेटों द्वारा बेरोज़गार, अपाहिज बनाने की कोशिश की गई है। एक भी बेटा अपने बाप को पास रखने के लिए असमर्थ है।

'वर्षा अडालजा' की कहानी 'अड़धे रस्ते' मे एक माँ अलग-अलग व्यवसाय से जुड़े बेटों को अपने परिवार से जुड़े रखने की कोशिश में लगी है। मगर बड़ा लड़का अमेरिकन ग्रीनकार्डवाली लड़की के साथ अमेरिका चला जाता है। दूसरा बेटा जो पत्रकारत्व में एक अंग्रेजी प्रकाशनगृह में नौकरी में लग जाता है, वहाँ उसे रेशमा मिलती है और वह उससे आर्य समाज में शादी कर लेता है। तब निरुबहेन कहती है - "एक ने लई गई ग्रीन कार्ड वाळी अने बीजा ने छापावाळी"[16]

दोनों लड़कों का व्यवसाय अलग-अलग है इसीलिए परिवार से अलग रहकर अपनी दुनिया बसाना चाहते हैं, मगर माँ-बाप बेटों के वियोग को सारी जिन्दगी तनाव से गुजरने को अपनी नियति मान लेते हैं। यहाँ बेरोज़गारी नहीं बल्कि अलग-अलग व्यवसाय के कारण परिवार विघटित हो जाता है। इस प्रसंग में ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है कि गुजरात में विदेश में जा बसने की प्रवृत्ति संभवतः सबसे अधिक देखी जा सकती है। इसलिए कहानी लेखिका ने अफनी कहानी में इस समस्या को उठाया है, जबकि आज पूरा देश इस गंभीर समस्या से बेतरह जूझ रहा है और इस विषय पर हिन्दी में भी अब काफी कहानियाँ लिखी जा चुकी हैं।

अर्थ के प्रभाव से निजी से निजी सम्बन्धों ने भी अपनी नैतिकता खो दी है। भाई-बहन, माता-पिता परस्पर दूर हो गये हैं। सन्तान के लिए आज माँ-बाप, जो जन्म देकर उनका लालन-पालन करते हैं, वो कोई मायने नहीं रखते। यह व्यक्ति की मजबूरी नहीं है, एक सामाजिक मजबूरी है। वस्तुतः अर्थ सारे पापों की जड़ है। इसके लिए ही जीवन में संघर्ष होता है। इसी से जीवन की दृष्टि में परिवर्तन आता है।

आधुनिक युग में व्यवसायों का स्वरूप और प्रक्रिया अत्यधिक जटिल हो गई है। व्यक्ति का अधिकांश समय अपनी नौकरी या व्यवसायों के कार्य में व्यतीत होता है। शहरी चकाचौंध से व्यक्ति कुछ देर के लिए प्रभावित अवश्य होता है, लेकिन उसे अनेक परेशानियों से जूझना पड़ता है। एक विद्वान ने सही लिखा है कि "यांत्रिकी और औद्योगिकता का सबसे अधिक प्रभाव मानवीय सम्बन्धों के रूपों पर ही पड रहा है और ये सम्बन्ध एक भयंकर तनाव के बीच गुजर रहे हैं।"[17]

इस प्रकार व्यवसाय, व्यवसायों की प्रकृति और कार्यदशाओं आदि ने पारिवारिक सम्बन्धों को दूर तक प्रभावित किया है। साहित्य में व्यवसायगत तनावों के कारण प्रभावित होते हुए पारिवारिक सम्बन्धों का चित्रण बहुत विस्तार से तो नहीं है, लेकिन उनकी दृष्टि से ये स्थितियाँ अनदेखी भी नहीं रही हैं।

'मालती जोशी' की कहानी 'मध्यान्तर' में मध्यमवर्गीय एक युवती विमल पंडित की कथा है, जो आर्थिक मजबूरियों के कारण विवाह पूर्व और विवाह के बाद भी नौकरी करती है। आज की

नारी का क्षेत्र केवल घर के भीतर ही नहीं, बाहर का भी है। आज ऐसी कई नारियाँ दुकानों, दफ़्तरों में नौकरी करती हैं। विमल के कन्धों पर घर गृहस्थी का बोझ है, जिसे ढोते हुए वह घर और दफ़्तर दोनों ही जगह अपमान का घूँट पीती है। उसे एक लड़की है। उसका प्रति 'अगला बच्चा अभी नहीं, दो के बाद कभी नहीं" इस नारे का झूठा समर्थन करता है। जबकि बहन को चार लडकियों के बाद लड़का होने पर वह खुशी मनाता है। लेकिन विमल कहती है - "लोगों के यहाँ चार-चार पैदा होते चले जाते हैं। और यहाँ...."[18] पति-पत्नी में हर रोज झगड़ा होता है। पत्नी कहती है "हम इतने गए गुजरे हैं कि दो बच्चे भी नहीं पाल सकते। जिन्दगी भर दूसरों की ही गृहस्थी का बोझ ढोते रहना होगा।"[19] पत्नी समझती है "पैसे कमाने की मशीन रह गई हूँ। मशीन हूँ न, रोने का हक थोड़े ही है मुझे।"[20] कहानी में अपनी संवेदनाओं और आशाओं-आकांक्षाओं को कुचलकर व्यावसायिक और पारिवारिक तनाव को ढोती हुई विमल की लाचारी को प्रस्तुत किया गया है। राजेन्द्र यादव की कहानी 'नौसिखिया' में देखा जा सकता है कि एक ऐसे मध्यमवर्गीय समाज का लड़का, जो बी.ई. इंजीनियर है, वह परिवार वालों का पेट भरने के लिए कोई भी छोटी-मोटी नौकरी करना चाहता है। महामारी के बाद उसे फ़ैक्टरी में नौकरी तो मिल जाती है, मगर व्यवहारिक अनुभव में शून्य होने के कारण उसे नौकरी से हटा दिया जाता है। वह हाथ जोडकर प्रार्थना करता है कि - "जी, मैं क्या करूँ। मैं इतनी जल्दी कैसे.... ।" कहते-कहते उसका गला रूँध गया, "सर आप नहीं जानते हैं, हमारी फैमिली बहुत गरीब है। सब मेरे पर ही डिपेंडेंट हैं। मैं..."[21]

उसे नौकरी छोड़ देनी पड़ती है और एक पढा-लिखा बेरोज़गारी की चपेट में आ कर परिवार में तनाव का कारण बन जाता है। सच्चिदानंद धूमकेतु लिखित 'असली हिन्दुस्तान' कहानी में भी शिक्षित बेरोज़गारी की समस्या को उठाया गया है। एक पढ़े-लिखे नवयुवक

भूदेव को अपने परिवार के लिए मौत के कुँए में मोटर सायकिल चलाने की नौकरी स्वीकार करनी पड़ती है। वह कहता है "पापी पेट जो न कराये वह कम है।"[22] कहानी में कारुणिकता तब आती है जब भूदेव की मौत हो जाती है। आज का मानव व्यावसायिकता से ग्रस्त होकर मौत को भी सहर्ष स्वीकार कर लेता है। भूखों मरने से एकदम मरना क्या बुरा है?

मधुकर सिंह की कहानी 'उसका सपना' में एक परिवार है, जिसमें पिता-पुत्र की बेरोज़गारी के कारण परिवार हर रोज़ तनाव से गुजरता है। केशो सिंह इंजिनियर हो जाता है, मगर सच्चाई के कारण कहीं टिक नहीं पाता। वह सही जगह की तलाश में भटकता है और कई इंटरव्यू देता है। एक बार वह इंटरव्यू देने जाते समय पिता से पैसा माँगता है तो पिता - "अब ठेंगा भी नहीं दूँगा। तीन बार हो चुका। नौकरी नहीं मिलती तो मजदूरी तो करो।"[23] उसे लगता है व्यावसायिकता के कारण सारे मूल्य कुचले गये हैं। वात्सल्य, पितृत्व, नीति-ईमान सब कुछ इतना ही नही, घी माँगने पर माँ अपने बेटे से कहती है - "खाना है तो खाओ, वरना मर जाओ। घी कहाँ से माँस बेचकर लाऊँ? बैठकर खाने पर भी तैश। अपनी कमाई पर रोब दिखलाना। काम के न काज के, दुश्मन अनाज के।"

आधुनिक युग में शिक्षित बेरोज़गारों की समस्या निरन्तर विषम होती जा रही है। उच्च शिक्षा प्राप्त युवकों को लेकर माता-पिता की महत्वाकांक्षाएँ बढ़ी हैं, किन्तु रोज़गार की स्थितियाँ अत्यन्त क्रूर हो गयी हैं। परिणामस्वरूप देश के युवकों को निराशा और असन्तोष ने घेर लिया ह। आज सामाजिक व्यवस्था में अर्थ के प्रति लालसा बढ़ी है। नौकरियाँ न मिलने के कारण परम्परागत परिवारों में तनाव और संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई है।

साथ-साथ परिवार विघटित भी होते गये। पारिवारिक विघटन का एक कारण बेरोज़गारी और अर्थव्यवस्था भी है। डॉ. रमेशचन्द्र लवानियाँ का कथन है, "आज व्यक्ति असहाय है, व्यक्ति की असहाय आस्था का कारण धन की कमी है। आर्थिक सुदृढ़ता व्यक्ति को टूटने से बचाती है।"[25]

सुधा अरोड़ा की कहानी 'महानगर की मैथिली' में महानगरों में नौकरीपेशा पति-पत्नी की भाग-दौड़, अत्यधिक व्यस्तता और परिणामस्वरूप बच्चों की ओर ध्यान न दे पाने की समस्याओं को चित्रित किया गया है। पति-पत्नी अत्यधिक व्यस्त होने के कारण अपनी इकलौती बेटी के लिए समय नहीं दे पाते। परिणामस्वरूप बच्ची को आया पर, पड़ोसियों पर निर्भर रहना पड़ता है। मैथ्यू बहुत समझदार है। कभी-कभी एकदम बड़ों की तरह बर्ताव करने लगती है। डैडी के दफ़्तर जाते समय उन्हें पेन, रूमाल, बूट आदि लाकर देने का काम भी वह करती है। स्थितियों के कारण छोटी-सी लड़की में जरूरत से कहीं ज्यादा समझ है। मम्मी-डैडी को एक इतवार के दिन ही छुट्टी मिलती है। तब भी घर के सारे काम निपटाते रहते हैं। उससे वक्त निकालकर वे दोनों शॉपिंग और पिक्चर के लिए चले जाते हैं। मैथ्यू को रखने का प्रॉब्लम है। उसे ताराबाई की खोली में वहाँ खेलते बच्चों के साथ गन्दे माहौल में रहना पड़ता है। कभी-कभी वह साथ जाने की जिद भी करती है, लेकिन उसका कोई असर नहीं होता, वे उसे साथ नहीं ले जाते।

एक दिन मैथ्यू बीमार पड़ जाती है। वह तेज बुखार में बडबडाने लगती है। यहाँ स्थितियाँ कुछ ऐसी हैं कि डैडी के दफ़्तर में इन्स्पैक्शन है तो मम्मी के स्कूल में इम्तिहान।

दोनों की बहस होती है। अन्त में डैडी ही घर पर रहते हैं। मम्मी अगर निकलने में पाँच मिनट की देर करें तो उसे आठ रूपये रिक्शा के देने पड़ेंगे।

इधर मैथ्यू कहती है – "पप्पा, तुम भी जाओ, हम भी ताराबाई की खोली में रहेंगे। पप्पा के समझाने के बावजूद भी वह ताराबाई के यहाँ जाने की जिद करती है , बेहोशी में बड़बड़ाती है।"[26]

महानगर में व्यावसायिक व्यस्तता और आर्थिक परिस्थितियों को झेलते परिवार नौकरी करने के लिए मजबूर हैं और बच्चे किसी आया के पास रहने को विवश। व्यवसाय के कारण बच्चे स्वाभाविक खुशी को हासिल नहीं कर पाते। बच्चों के मम्मी-डैडी उनकी तरफ ध्यान नहीं देते, छुट्टी के दिन भी उन्हें अपना दिन अच्छा बिताना है। मैथ्यू के जन्म दिन के बाद एक दिन शुभ अवसर पर उसका नामकरण किया गया था। उन दिनों 'मैथिली वनवास' नाटक जोर-शोर से चल रहा था। 'म' से अक्षर निकलने पर दादा-दादी ने बड़ी धूमधाम से उसका नाम मैथिली रखा था। उन्हें भी उस समय क्या पता था कि इस मैथिली को महानगर का वनवास झेलना पड़ेगा। मैथिली को व्यवसायिक व्यस्तता के कारण अपने मम्मी-डैडी का साथ नहीं मिल पाता।

महानगरीय दम्पत्ति की आर्थिक-मजबूरियाँ, उनके छोटे-छोटे सुखों के लिए , खुशियों के लिए किए जाने वाले समझौते, उसका बच्चों पर पड़ने वाला असर बहुत अच्छी तरह इस कहानी में उभारा है। मैथिली उन तमाम बच्चों का प्रतिनिधित्व करती है, जिनके माता-

पिता आर्थिक कठिनाईयों के कारण दोनों कमाने के लिए मजबूर होते हैं। दोनों कमाते हैं फिर भी बच्ची के लिए जिन्दगी को बेहतर नहीं बना पाते। यह बच्ची की विडम्बना है कि इस तरह जीने के लिए मजबूर बालकों की आधुनिक युग में संख्या अधिक है। इस समस्या का हल तो नहीं है पर दिन-प्रतिदिन यह समस्या जटिल होती जा रही है। इसके फलस्वरूप बच्चों की मानसिकता किस प्रकार बदलती है, वे मन ही मन कैसा महसूस करते हैं, किस प्रकार से माता-पिता और अन्य परिवारजनों से स्नेह की कमी पाते हैं, इसका चित्रण अनेक कहानियों में - सुधा अरोड़ा की कहानी 'महानगर की मैथिली' के साथ मालती जोशी की 'गुडमार्निंग मिस मैथ्यूज', निर्मल वर्मा की 'दूसरी दुनिया', प्रतिमा वर्मा की 'स्माइली' आदि कहानियों में व्यस्त समाज में बच्चों की स्थिति और मनःस्थिति को आँका गया है।

व्यवसाय के कारण व्यक्ति का अपने परिवार से आत्मीय सम्बन्ध टूटता चला जाता है। स्वयं की प्रसिद्धि और पैसा कमाना ही उसका मुख्य उद्देश्य हो जाता है। व्यावसायिक उतार-चढ़ाव भी परिवार में तनाव पैदा करता है। व्यापार-व्यवसाय में अचानक घाटा या नौकरी का छूट जाना ऐसी स्थितियाँ हैं जो पारिवारिक विघटन को बढ़ावा देती हैं। व्यावसायिक तनाव आर्थिक दृष्टि से देखा जाय तो महँगाई, भ्रष्टाचार, घूसखोरी आदि के बढ़ जाने से आम आदमी त्रस्त हो चुका है।

***

## सन्दर्भ सूचि


1. मृदुला गर्ग - तुक - सं. चित्रा मुद्गल - सुरेन्द्र अरोडा - टूटते परिवारों की कहानियाँ - पृ. 124
2. ममता कालिया - बोलने वाली औरत - उमस - पृ. 69
3. मधुकर सिंह - फिलहाल - कहानी - जून-1973
4. नीलप्रभा भारद्वाज - बड़े सपने, छोटे सपने - साहिल और तुफान - पृ. 19
5. नीलप्रभा भारद्वाज - बड़े सपने, छोटे सपने - साहिल और तुफान - पृ. 19
6. विनोद दास - इतनी जल्दी - हिन्दी की पुरस्कृत कहानियाँ - पृ. 192 (शिखर, पत्रिका द्वारा पुरस्कृत)
7. सुरेन्द्र सुकुमार - नागवंशी - समाधान - पृ. 39
8. सुधा अरोड़ा - दमनचक्र, युद्ध विराम - पृ. 55
9. जानवर और जानवर - मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ - पृ. 369
10. मोहन राकेश - रोज़गार - मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ - पृ. 302
11. मोहन राकेश - मिस पाल - सम्पूर्ण कहानियाँ - पृ. 11
12. मिट्टी के रंग - मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ - पृ. 247
13. क़मलेश्वर - नयी कहानी की भूमिका - पृ. 112
    संस्करण - 1978, शब्दकार - तुर्कमान गेट, दिल्ली
14. महीपसिंह - कुछ और कितना - कीचड़ - पृ. 92
15. महीपसिंह - कीचड़ - कुछ और कितना - पृ. 94
16. वर्षा अडालजा - अडधे रस्ते - पृ. 26 (जन कल्याण - 2002)
17. डॉ. महाराज कृष्ण जैन का कथन - हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा,
    सं. रामदरश मिश्र, डॉ. नरेन्द्र मोहन, पृ. 58, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
18. मालती जोशी - मध्यान्तर - पृ. 85
19. मालती जोशी - मध्यान्तर - पृ. 86
20. मालती जोशी - मध्यान्तर - पृ. 87
21. राजेन्द्र - नौसिखिया - प्रकाशित कहानी- धर्मयुग, 25 जनवरी 1976, पृ. 23

22. सच्चिदानंद धूमकेतु - असली हिन्दुस्तान - एक थी शकुन दी (1979), पृ. 15
23. मधुकरसिंह - उसका सपना - मधुकरसिंह की प्रतिनिधि कहानियाँ - पृ. 1982
24. मधुकरसिंह - उसका सपना - मधुकरसिंह की प्रतिनिधि कहानियाँ - पृ. 1982
25. डॉ. रमेशचन्द्र लवानिया - हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य - पृ. 227
26. सुधा अरोड़ा - महानगर की मैथिली